गल्लू साह

बनाम

बिहार राज्य

(एस. आर. दास मुख्य न्यायाधीश, भगवती, वेंकटरामा अय्यर और एस. के. दास न्यायमूर्तिगण)

आपराधिक विचारण - आगजनी - मुख्य अपराधी बरी - दुष्प्रेरक दोषसिद्धि - भारतीय दंड संहिता (1860 का XLV), धारा 107, 108, 109 और 436.

अभियोजन पक्ष का मामला यह था कि अपीलकर्ता सहित 40-50 व्यक्तियों की एक भीड़ ने एक अवैध जमावड़ा बनाया, जिसका समान उद्देश्य आर की झोपड़ी को तोड़ना, उसमें आग लगाना और विरोध होने पर मारपीट करना था; उन्होंने कुछ व्यक्तियों पर हमला किया, और अपीलकर्ता ने बुदी नामक व्यक्ति को झोपड़ी में आग लगाने का आदेश दिया और बुदी ने उस आदेश के अनुसार आग लगा दी, जिसके परिणामस्वरूप झोपड़ी जलकर नष्ट हो गई। अपीलकर्ता और बुदी सहित कुल बाईस व्यक्तियों को विचारण के लिए प्रस्तुत किया गया। सत्र न्यायाधीश ने पाया कि सभी ने झोपड़ी को तोड़ने और विरोध होने पर हमला करने के समान उद्देश्य से अवैध जमावड़ा बनाया था, लेकिन झोपड़ी में आग लगाने का कोई साझा उद्देश्य नहीं था और आगजनी का कृत्य उस अवैध जमावड़े के कुछ सदस्यों द्वारा किया गया एक अलग कार्य था। उन्होंने यह भी पाया कि अपीलकर्ता ने बुदी को आग लगाने का आदेश दिया था और बुदी ने उकसावे के परिणामस्वरूप आग लगाई। सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 147, 148 और 323 के अंतर्गत दोषी ठहराया। बुदी को अतिरिक्त रूप से धारा 436 के तहत और अपीलकर्ता को धारा 436 सहपठित धारा 109 के अंतर्गत दोषी ठहराया गया। अपील पर उच्च न्यायालय ने बुदी की धारा 436 के तहत दोषसिद्धि को यह कहते हुए अपास्त कर दिया कि यह सिद्ध नहीं हुआ कि उसने झोपड़ी में आग लगाई थी। हालांकि, उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता की धारा 436 सहपठित धारा

109 के अंतर्गत दोषसिद्धि को बरकरार रखा, यह मानते हुए कि उसने आग लगाने का आदेश दिया था और वास्तव में अवैध जमावड़े के किसी सदस्य द्वारा झोपड़ी में आग लगा दी गई थी। अपीलकर्ता ने अपनी धारा 436 सहपठित धारा 109 के अंतर्गत दोषसिद्धि को इस आधार पर चुनौती दी कि यह स्थापित नहीं हुआ कि किसने झोपड़ी में आग लगाई, उसने ऐसा अपीलकर्ता के आदेश के परिणामस्वरूप किया था।

अभिनिर्धारित, अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 436 सहपठित धारा 109 के अंतर्गत सही रूप से दोषी ठहराया गया था। मामले में दिए गए निष्कर्षों के आधार पर यह माना जाना चाहिए कि जिसने झोपड़ी में आग लगाई, वह अवैध जमावड़े का ही एक सदस्य था और उसने ऐसा अपीलकर्ता के आदेश के परिणामस्वरूप किया।

राजा खान बनाम एम्परर, ए. आई. आर. 1920 कलकत्ता 834 और *उमादासी दासी बनाम एम्परर,* (1924) आई. एल. आर. 52 कलकत्ता 112 , संदर्भित ।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: 1957 की आपराधिक अपील सं. 183

विशेष अनुमति द्वारा दायर अपील, जो 21 जनवरी 1957 को पटना उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश जो 1956 की आपराधिक अपील संख्या 34 के विरुद्ध है, जो कि 23 जनवरी 1956 को दरभंगा स्थित द्वितीय सहायक सत्र न्यायाधीश की न्यायालय द्वारा 1955 की सत्र परीक्षण संख्या 52 में पारित निर्णय और आदेश से उत्पन्न हुई थी।

पी. के. चटर्जी, अपीलकर्ता के लिए।

डी. पी. सिंह, उत्तरदाता के लिए।

1958. 20 मई। न्यायालय का निर्णय निम्नलिखित द्वारा दिया गया

एस. के. दास न्यायमूर्ति.-इस विशेष अनुमति द्वारा दायर अपील केवल एक विशेष प्रश्न तक सीमित है, अर्थात् अपीलकर्ता गल्लू साह को भारतीय दंड संहिता की धारा 436 सहपठित धारा 109 के अंतर्गत दोषसिद्ध किए जाने की शुद्धता तथा उसके अंतर्गत दी

गई सजा की उपयुक्तता। संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं। लगभग 22 अभियुक्त व्यक्तियों, जिनमें अपीलकर्ता भी शामिल था, पर दरभंगा के विद्वान सहायक सत्र न्यायाधीश द्वारा भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत विभिन्न अपराधों के लिए मुकदमा चलाया गया। अभियोजन का मामला यह था कि 16 मई 1954 को दरभंगा जिले के धरहरा गाँव में लगभग 40–50 व्यक्तियों की एक भीड़, जिसमें अभियुक्तगण भी शामिल थे, ने एक अवैध जमावड़ा बनाया, जिसके समान उद्देश्य थे (1) मोस्मात रस्मानी की झोपड़ी को तोड़ना, (2) उसमें आग लगाना और (3) विरोध होने पर मारपीट करना। धरहरा गाँव के चौकीदार टेटर मियाँ लगभग सुबह 10 बजे गाँव में जन्म और मृत्यु की जानकारी एकत्र करने के लिए आए थे ताकि वह उक्त जानकारी थाने के प्रभारी अधिकारी को पंजीकरण हेतु दे सकें। जब यह चौकीदार मोस्मात रस्मानी, जो गणपत की विधवा थी, की झोपड़ी के पास पहुँचा, तो उसने भीड़ को झोपड़ी तोड़ते हुए पाया। चौकीदार ने इसका विरोध किया। इस पर आरोप है कि अपीलकर्ता ने उसे बाएँ जांघ पर लाठी से मारा। इसके बाद चौकीदार ने शोर मचाया और कई अन्य व्यक्ति वहाँ आ गए, जिनमें रामजी, नेबी और मुंगा लाल शामिल थे। इसके पश्चात आरोप है कि अपीलकर्ता ने अवैध जमावड़े के एक अन्य सदस्य बुदी को मोस्मात रस्मानी की झोपड़ी में आग लगाने का आदेश दिया और साथ ही रामजी और नेबी पर हमला करने का भी आदेश दिया। आरोप के अनुसार बुदी ने झोपड़ी में आग लगा दी और झोपड़ी जल गई। भीड़ के कुछ सदस्यों ने रामजी और नेबी का पीछा किया और उन पर हमला किया।

विद्वान सत्र न्यायाधीश ने यह पाया कि उनके समक्ष उपस्थित सभी अभियुक्तों ने वास्तव में एक अवैध जमावड़ा बनाया था और कथित तिथि एवं समय पर हथियारों से लैस होकर मोस्मात रस्मानी की झोपड़ी पर पहुँचे थे, जिनका समान उद्देश्य झोपड़ी को तोड़ना और विरोध होने पर हमला करना था। उन्होंने यह माना कि उपर्युक्त समान उद्देश्यों की पूर्ति में दंगा, मारपीट आदि के अपराध किए गए। जहाँ तक आगजनी के आरोप का संबंध है, उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि आग लगाने का कृत्य अवैध जमावड़े के कुछ

सदस्यों का एक पृथक कार्य था, क्योंकि पूरे अवैध जमावड़े का मोस्मात रस्मानी की झोपड़ी में आग लगाने का कोई समान उद्देश्य नहीं था। उन्होंने अपने समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों को स्वीकार करते हुए यह माना कि वर्तमान अपीलकर्ता ने बुदी को झोपड़ी में आग लगाने का आदेश दिया था और बुदी ने उस उकसावे के परिणामस्वरूप आग लगा दी थी। तदनुसार, उन्होंने अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 147, 148 और 323 आदि के अंतर्गत विभिन्न अपराधों के लिए दोषी ठहराया। बुदी को अतिरिक्त रूप से भारतीय दंड संहिता की धारा 436 के अंतर्गत तथा वर्तमान अपीलकर्ता को धारा 436 सहपठित धारा 109 के अंतर्गत दोषी ठहराया गया।

इसके पश्चात पटना उच्च न्यायालय में अपील की गई और जिस माननीय न्यायमूर्ति ने इसे सुना, उन्होंने यह पाया कि मोस्मात रस्मानी की झोपड़ी में आग लगाने के आरोप के संबंध में बुदी के विरुद्ध साक्ष्य पर्याप्त रूप से संतोषजनक नहीं थे, अतः उन्होंने बुदी को भारतीय दंड संहिता की धारा 436 के आरोप से बरी कर दिया। जहाँ तक अपीलकर्ता गल्लू साह का संबंध है, उन्होंने यह माना कि साक्ष्य से संतोषजनक रूप से यह स्थापित होता है कि गल्लू साह ने झोपड़ी में आग लगाने का आदेश दिया था और वास्तव में अवैध जमावड़े के किसी न किसी सदस्य द्वारा झोपड़ी में आग लगा दी गई थी। इस निष्कर्ष के आधार पर उन्होंने अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 436 सहपठित धारा 109 के अंतर्गत दोषसिद्धि और चार वर्ष के कठोर कारावास की सजा को बरकरार रखा। इसके अतिरिक्त, अपीलकर्ता की भारतीय दंड संहिता की धाराओं 147 और 323 के अंतर्गत दोषसिद्धि और सजा को भी बरकरार रखा गया, किंतु धारा 324 सहपठित धारा 149 के अंतर्गत दोषसिद्धि और सजा को अपास्त कर दिया गया। तथापि, हम उन दोषसिद्धियों और सजाओं से संबंधित नहीं हैं, अतः उनके बारे में और कुछ कहना आवश्यक नहीं है।

अब हम उस विशेष प्रश्न पर आते हैं, जिसके लिए यह अपील सीमित है, अर्थात भारतीय दंड संहिता की धारा 436 सहपठित धारा 149 के अंतर्गत अपीलकर्ता की

दोषसिद्धि और सजा की वैधता। अपीलकर्ता की ओर से श्री पी. के. चटर्जी उपस्थित हुए और उन्होंने दोषसिद्धि की शुद्धता को दो आधारों पर चुनौती दी: प्रथम, उन्होंने कहा कि जिस साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि की गई है, वही साक्ष्य बुदी साह के विरुद्ध भी दिया गया था, और यदि उस साक्ष्य को बुदी साह के संबंध में अविश्वसनीय माना गया, तो उसे अपीलकर्ता के विरुद्ध भी स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था; द्वितीय, उन्होंने कहा कि यद्यपि वे यह तर्क नहीं देते कि हर मामले में जहाँ मुख्य अपराधी को अपराध से बरी कर दिया गया हो, वहाँ सहायक का आरोपित व्यक्ति भी अनिवार्य रूप से बरी होना चाहिए, फिर भी इस विशेष मामले में ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि जिसने भी मोस्मात रस्मानी की झोपड़ी में आग लगाई, उसने ऐसा अपीलकर्ता के आदेश के परिणामस्वरूप किया, भले ही यह मान लिया जाए कि अपीलकर्ता ने आग लगाने का आदेश दिया था, और इसलिए अपीलकर्ता की दोषसिद्धि विधि के अनुसार गलत है।

प्रथम बिंदु के संबंध में, माननीय न्यायाधीश ने अपने निर्णय में यह उचित कारण दिए हैं कि क्यों बुदी साह के संबंध में गवाहों के साक्ष्य को स्वीकार नहीं किया गया और क्यों उन्हीं गवाहों की गवाही को अपीलकर्ता के संबंध में स्वीकार किया गया। इस संबंध में गवाह चार व्यक्ति थे, अर्थात टेटर, रामजी, नेबी और मुंगा लाल। ऐसा प्रतीत होता है कि टेटर ने अपने प्रथम सूचना विवरण में यह उल्लेख नहीं किया कि बुदी ने झोपड़ी में आग लगाई थी, लेकिन उसने यह अवश्य कहा था कि अपीलकर्ता ने आग लगाने का आदेश दिया था। इसी प्रकार की कमी रामजी के साक्ष्य में भी पाई गई, जिसने भी पुलिस अवर निरीक्षक को यह नहीं बताया कि बुदी ने झोपड़ी में आग लगाई थी। नेबी का प्रति-परीक्षण संभव नहीं हो सका क्योंकि सत्र न्यायालय में मुकदमे की शुरुआत से पहले ही उसकी मृत्यु हो गयी थी। मुंगा लाल के संबंध में प्रति-परीक्षण में यह सामने आया कि उसने घटनास्थल पर या बाद में अपने किसी सह-ग्रामवासी से यह नहीं कहा कि बुदी ने झोपड़ी में आग लगाई थी। इन कारणों से विद्वान न्यायमूर्ति ने उपर्युक्त चारों गवाहों के साक्ष्य को बुदी के विरुद्ध लगाए गए

आरोप के संबंध में स्वीकार नहीं किया। तथापि, इन गवाहों के साक्ष्य में जो कमी बुदी साह के संबंध में पाई गई, वह अपीलकर्ता के विरुद्ध आरोप के संबंध में उपस्थित नहीं थी, और माननीय न्यायमूर्ति ने स्पष्ट रूप से कहा कि इन चारों गवाहों का साक्ष्य अपीलकर्ता के विरुद्ध सुसंगत था। हमें ऐसा कोई विधिक नियम या विवेक का उल्लंघन प्रतीत नहीं होता जिसके आधार पर यह कहा जाए कि विद्वान न्यायमूर्ति ने कुछ गवाहों की गवाही को अपीलकर्ता के विरुद्ध स्वीकार किया, जबकि उन्हीं गवाहों की गवाही को बुदी साह के विरुद्ध स्वीकार नहीं किया गया।

अब हम अपीलकर्ता की ओर से उठाए गए दूसरे बिंदु पर आते हैं। यहाँ यह विशेष रूप से स्पष्ट करना आवश्यक है कि विद्वान न्यायमूर्ति इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि (1) अपीलकर्ता ने झोपड़ी में आग लगाने का आदेश दिया था और (2) झोपड़ी वास्तव में अवैध जमावड़े के किसी एक या अधिक सदस्यों द्वारा आग लगाकर जला दी गई थी, यद्यपि पूरे अवैध जमावड़े का मोस्मात रस्मानी की झोपड़ी में आग लगाने का कोई समान उद्देश्य नहीं था। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया तर्क यह है कि जब विद्वान न्यायमूर्ति ने यह स्वीकार नहीं किया कि बुदी ने झोपड़ी में आग लगाई थी, तब वास्तव में ऐसा कोई साक्ष्य नहीं बचता जिससे यह सिद्ध हो सके कि जिसने भी मोस्मात रस्मानी की झोपड़ी में आग लगाई, उसने ऐसा गल्लू साह के आदेश के परिणामस्वरूप किया। विद्वान अधिवक्ता यह इंगित करते हैं कि अपराध के आवश्यक तत्वों में से एक यह है कि जिस कार्य का उकसावा किया गया है, वह वास्तव में उसी उकसावे के परिणामस्वरूप किया गया हो।

इस चरण पर भारतीय दंड संहिता के कुछ प्रावधानों को बताना आवश्यक है जो उकसावे के अपराध से संबंधित हैं। धारा 107 यह परिभाषित करती है कि उकसावा क्या होता है। इसमें कहा गया है...

"धारा 107. कोई व्यक्ति किसी कार्य को करने में सहायता करता है, जो-

प्रथम—किसी व्यक्ति को उस कार्य को करने के लिए उकसाता है; अथवा

द्वितीय—एक या अधिक व्यक्तियों के साथ मिलकर उस कार्य को करने की आपराधिक साजिश में सम्मिलित होता है, यदि उस साजिश के अनुसरण में कोई कार्य या अवैध चूक होती है और वह उस कार्य को करने के उद्देश्य से होती है; अथवा

तृतीय—किसी कार्य या अवैध चूक द्वारा जानबूझकर उस कार्य को करने में सहायता करता है।"

धारा 108 दो भागों में है और यह बताती है कि दो परिस्थितियों में उकसाने वाला कौन होता है—(1) जब उकसाया गया अपराध वास्तव में किया जाता है, और (2) जब कोई ऐसा कार्य किया जाता है जो यदि किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाए जो विधि के अनुसार अपराध करने में सक्षम हो और वही आशय या ज्ञान रखता हो जो उकसाने वाले का है, तो वह अपराध होता। वर्तमान मामले में हम दूसरी परिस्थिति से संबंधित नहीं हैं। हम उस व्यक्ति से संबंधित हैं जो किसी अपराध के किए जाने का उकसावा करता है। इसके बाद धारा 109 आती है, जो इस प्रकार है:

"धारा 109: जो कोई किसी अपराध का उकसावा करता है, यदि वह कार्य जिसे उकसाया गया है, उस उकसावे के परिणामस्वरूप किया जाता है, और इस संहिता में ऐसे उकसावे के लिए दंड का कोई विशेष प्रावधान नहीं है, तो उसे उस अपराध के लिए निर्धारित दंड के अनुसार दंडित किया जाएगा।

व्याख्या —किसी कार्य या अपराध को उकसावे के परिणामस्वरूप किया गया तब कहा जाता है जब वह कार्य उकसाने के कारण किया गया हो, या किसी आपराधिक साजिश के अनुसरण में किया गया हो, या उस सहायता के साथ किया गया हो जो उस उकसावे का आधार बनती है।

मामले में दिए गए निष्कर्षों के आधार पर हमें ऐसा प्रतीत होता है कि मोस्मात रस्मानी की झोपड़ी में आग लगाने वाला व्यक्ति अवश्य ही अवैध जमावड़े के सदस्यों में से एक था और उसने यह कार्य वर्तमान अपीलकर्ता के आदेश के परिणामस्वरूप किया था। हमारे विचार में

यह मानना अत्यंत अवास्तविक होगा कि जिसने झोपड़ी में आग लगाई, उसने यह कार्य अपीलकर्ता के आदेश से स्वतंत्र या अलग होकर किया। हमारी राय में ऐसा निष्कर्ष मामले के तथ्यों से पूरी तरह कटे हुए और अवास्तविक होगा, और यह कहना आवश्यक है कि ऐसा कोई निष्कर्ष न तो माननीय सहायक सत्र न्यायाधीश द्वारा दिया गया था जिन्होंने अपीलकर्ता का विचारण किया और न ही पटना उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायमूर्ति द्वारा। जैसा कि हम विद्वान न्यायमूर्ति के निष्कर्षों को पढ़ते हैं, हमें यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उन्होंने पाया कि जिसने मोस्मात रस्मानी की झोपड़ी में आग लगाई, उसने यह कार्य उकसावे अर्थात् अपीलकर्ता के आदेश के परिणामस्वरूप ही किया था।

यह आवश्यक है कि हम दो निर्णयों का उल्लेख करें जिनकी ओर हमारे ध्यान को विद्वान अधिवक्ता द्वारा आकर्षित किया गया है। *राजा खान बनाम एम्परर* [1]का निर्णय ऐसे मामले से संबंधित था जहाँ टोरप अली को एक धोखाधड़ी के अपराध में, सबदर फराजी का रूप धारण करके उसकी जमानत पत्र पर नाम उपयोग करने का दोषी माना गया था। उस मामले में टोरप अली पर मुख्य अपराधी होने का आरोप था, जबकि राजा खान और चेरक अली आकोन, जो उस मामले में दो अपीलकर्ता थे, पर यह आरोप था कि उन्होंने उस पहचान के समय उपस्थित रहकर अपराध में उकसावा किया, जिसे टोरप अली द्वारा किया जाना कहा गया था। टोरप अली को न्यायपीठ द्वारा बरी कर दिया गया था। हालांकि, जिस विद्वान न्यायमूर्ति ने न्यायपीठ विचारण की अध्यक्षता की, उन्होंने न्यायपीठ को यह नहीं बताया कि टोरप अली की बरी होने का प्रभाव राजा खान और चेरक अली के विरुद्ध उकसावे के आरोप पर क्या होगा। इसी चूक के कारण राजा खान और चेरक अली की दोषसिद्धि रद्द कर दी गई। प्रतिवेदन के निर्णय सार में सामान्य रूप से यह कहा गया था कि जहाँ किसी व्यक्ति पर अपराध करने का आरोप हो और दूसरे व्यक्ति पर उसी अपराध के उकसावे का आरोप हो, और यदि अभियोजन मुख्य अपराध को सिद्ध करने में असफल हो जाए, तो

---

1 ए. आई. आर. 1920 कलकत्ता 834 .

उकसावे के लिए दोषसिद्धि नहीं हो सकती। इस सामान्य कथन की बाद में *उमादसी दासी बनाम एम्परर*[2] में समीक्षा की गई और यह बताया गया कि अधिकांश मामलों में यह सामान्य नियम सही हो सकता है, लेकिन इसके अपवाद भी हैं, विशेषकर उन मामलों में जहाँ साक्ष्य यह संतोषजनक रूप से स्थापित कर देता है कि उकसाया गया अपराध वास्तव में किया गया है और वह भी उकसावे के परिणामस्वरूप किया गया है।

इस प्रकार हम यह मानते हैं कि अपीलकर्ता की भारतीय दंड संहिता की धारा 436 सहपठित धारा 109 के अंतर्गत दोषसिद्धि विधि के अनुसार दोषपूर्ण नहीं है। जहाँ तक सजा का प्रश्न है, हमें ऐसा प्रतीत नहीं होता कि यह अत्यधिक कठोर है। यह बताया गया है कि अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 147 और 323 के अंतर्गत दी गई सजा भुगतने के पश्चात जमानत पर रिहा कर दिया गया था। हमारे विचार में इस अपील में कोई योग्यता नहीं है और इसे खारिज किया जाना चाहिए। अपीलकर्ता को अब शेष सजा भुगतने के लिए आत्मसमर्पण करना होगा।

याचिका खारिज की जाती है ।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।

2 (1924) आई. एल. आर. 52 कलकत्ता 112 .